

## राष्ट्रहित के संदर्भ में कौटिल्य के धार्मिक विचार

दिवांशु कुमार<sup>1a</sup>

<sup>a</sup>एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, नन्दलाल सिंह महाविद्यालय, दाउदपुर, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार, भारत

### ABSTRACT

आज के वैज्ञानिक युग में हम भौतिक सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने में जी-जान से लगे हैं। मानव आध्यात्मिकता से दूर होकर भौतिकता के चकाचौंध के कारण लक्ष्य से च्युत हो गया है। मानव जीवन में अध्यात्म और भौतिकवाद दोनों की आवश्यकता होती है। भौतिकता की उपेक्षा करने से हमें आलस्य और अकर्मण्यता का शिकार होना पड़ता है। अध्यात्म में 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' उपदेश के कारण हम पुरुषार्थ को छोड़कर भाग्यवादी बन जाते हैं। इसी तरह भौतिकता से प्रभावित होकर स्वार्थपरता में लीन हो जाते हैं। कौटिल्य का अर्थशास्त्र इन दोनों विकृतियों से बचने का कुशल और सफल साधन है। राष्ट्रहित में कौटिल्य का यह स्पृहणीय मध्यममार्ग सतत प्ररेक रहेगा।

**KEY WORDS:** कौटिल्य, अर्थशास्त्र, राजदर्शन, धर्मदर्शन, अर्थ, धर्म, काम

कौटिल्य प्रणीत 'अर्थशास्त्र' भारतीय राजनीतिशास्त्र का प्रौढ़ एवं प्रामाणिक राजदर्शन का अद्वितीय ग्रंथ है। भारतीय संस्कृति के अंतर्गत प्राचीन काल से ही धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की अवधारणा देखी जाती है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में त्रिवर्ग के रूप में अर्थ, धर्म एवं काम का विवेचन किया है। जैसा कि कौटिल्य ने लिखा है - 'अर्थो धर्मः काम इत्यर्थत्रिवर्गः' (अर्थशास्त्र 9 / 145-146) धर्म और काम की पूर्ति के लिए अर्थ की नितांत आवश्यकता होती है। पहले धर्मशास्त्र के अंतर्गत ही 'अर्थशास्त्र' का निरूपण किया गया है। कौटिल्य ने धर्म का विवेचन पृथक् रूप से नहीं किया है। यत्र-तत्र विभिन्न संदर्भों में धर्म के स्वरूप और आवश्यकता की चर्चा की गई है। कौटिल्य के अनुसार धर्म सामाजिक कर्तव्य, नैतिक कानून और नागरिक कानून के रूप में निरूपित है। वह धर्म और दण्ड के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध देखता है, उसने धर्म को अर्थ और काम से अलग नहीं रखा है।

आज के वैज्ञानिक युग में हम भौतिक सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने में जी-जान से लगे हैं। मानव आध्यात्मिकता से दूर होकर भौतिकता के चकाचौंध के कारण लक्ष्य से च्युत हो गया है। मानव जीवन में अध्यात्म और भौतिकवाद दोनों की आवश्यकता होती है। भौतिकता की उपेक्षा करने से हमें आलस्य और अकर्मण्यता का शिकार होना पड़ता है। अध्यात्म में 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' उपदेश के कारण हम पुरुषार्थ को छोड़कर भाग्यवादी बन जाते हैं। इसी तरह भौतिकता से प्रभावित होकर स्वार्थपरता में लीन हो जाते हैं। कौटिल्य का अर्थशास्त्र इन दोनों विकृतियों से बचने का कुशल और सफल साधन है। राष्ट्रहित में कौटिल्य का यह स्पृहणीय मध्यममार्ग सतत प्ररेक रहेगा। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्रतिपादित विचार स्फुट रूप से वेदों, ब्राह्मण, पुराण, गृह्यसूत्रों, स्मृतियों और धर्मशास्त्रों, रामायण तथा महाभारत

आदि में यथासाध्य उपलब्ध होते हैं। यथा - 'महाभारत' में अर्थशास्त्रीय सूक्षितायाँ द्रष्टव्य हैं -

धनमाहुः परं धर्मं धने सर्वं प्रतिष्ठितम्।  
जीवन्ति धनिनो लोके मृता ये त्वधना नराः ॥

(महाभारत, उद्योगपर्व 71-31)

धनात् कुलं प्रभवति धनाद् धर्मः प्रवर्धते।  
नाधनस्यास्ययं लोको न परः पुरुषोतम् ॥

(महाभारत, शान्तिपर्व, 08-22)

राजा हि पूजितो धर्मस्तः सर्वत्र पूज्यते।  
यद् यदाचरते राजा तत् प्रजानां स्म रोचते ॥

(वही 75-04)

कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुशीलन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि कौटिल्य ने मौर्य साम्राज्य को सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित करने के लिए व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के स्तर पर विचार किया है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्रहित के लिए ईमानदारी और तत्परता से अपने दायित्व का निर्वहन करना चाहिए। कौटिल्य वर्णश्रम व्यवस्था का समर्थक था। उन्होंने वर्ण-व्यवस्था को समाज के स्थायित्व और विकास के लिए आवश्यक माना है। अपने पूर्व के आचार्यों और धर्मशास्त्रों में उल्लिखित वर्ण-व्यवस्था को मान्यता देते हुए कौटिल्य ने भी चार वर्णों का उल्लेख किया है और चारों के कार्यों का भी विवरण प्रस्तुत किया है। अर्थशास्त्र में कहा गया है

"एष त्रयोधर्मश्वतुर्णा वर्णनामाश्रमाणं  
च स्वधर्मस्थापनादौपकारिकः । ॥"

(अर्थशास्त्र अधिकरण 1 अध्याय 2)

## कुमारः राष्ट्रहित के संदर्भ में कौटिल्य के धार्मिक विचार

व्यक्ति और समष्टि के उत्थान के लिए प्राचीन भारत में जो नियम बनाये गये थे, उन्हें ही वर्णश्रम व्यवस्था कहा जाता है। सभी वर्णों और सभी आश्रमों का सार्वभौम धर्म यह है कि वह किसी प्रकार की हिंसा न करे, सत्य बोले, पवित्र बना रहे, किसी से ईर्ष्या या द्वेष न करे तथा दयावान और क्षमाशील बना रहे। स्वधर्म पालन करने की अनिवार्यता पर बल देते हुए कौटिल्य ने कहा है कि स्वधर्म का पालन करने से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। उसका पालन नहीं करने से वर्ण तथा कर्म में संकीर्णता आ जाती है और लोक का नाश हो जाता है। उसने राजा को यह निर्देश दिया है कि अपनी प्रजा को धर्म और कर्म मार्ग से भ्रष्ट न होने दे। अपनी प्रजा को धर्म और कर्म में प्रवृत्त रखनेवाला राजा लोक परलोक दोनों में सुखी रहता है। यथोक्तम् –

“तस्मात्स्वधर्मभूतानां राजा न व्यभिचारयेत् ।  
स्वधर्मसंदधानो हि प्रेत्य चेह च नन्दति ॥”(वही)

कौटिल्य के अनुसार समाज और परिवार की उन्नति को दृष्टि में रखकर तथा अपने कर्तव्यों का पूरी तरह पालन करता हुआ व्यक्ति वानप्रस्थ और सन्यास जीवन धारण कर सकता है। हिन्दुओं की धर्मव्यवस्था में वैयक्तिक आत्मोन्नति की कामना करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि पहले वह नैतिक, सामाजिक और परिवारिक जीवन की मंजिलों को क्रमशः पार कर उसके बाद वानप्रस्थ या सन्यास का जीवन धारण करे।

राज्य में सुख—शक्ति के लिए धर्म की सुव्यवस्था करना राजा का परम कर्तव्य होता है। धर्म का सम्बन्ध आचार—विचार एवं अनुशासन से है। धर्म को राजनीति से पृथक् नहीं करना चाहिए अन्यथा राज्य में उच्छृंखलता हो सकती है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में धर्म का सम्यक् निरूपण किया है।

धर्म शब्द मूल ‘धृ’ से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ होता है – धारण करना। अतएव धर्म वह सार है जो किसी वस्तु का पोषण करता है या किसी वस्तु को जीवित रखता है। कौटिल्य ने धर्म का प्रयोग तीन अर्थों में किया है –

प्रथम सामाजिक कर्तव्य के रूप में, द्वितीय सत्य पर आधारित नैतिक कानून के रूप में एवं तृतीय नागरिक कानून के रूप में।

सामाजिक कर्तव्य के रूप में कौटिल्य का मत है कि एक आदर्श राजा को धर्मनिष्ठ होना चाहिए एवं धर्म की रक्षा करनी चाहिए। यदि सन्यासी भी धर्म की अवहेलना करे तो उसे दण्ड दिया जाना चाहिए। कौटिल्य को पूरा विश्वास है कि वर्णश्रम धर्म का पालन होने पर स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति संभव है। स्वधर्म का उल्लंघन होने पर समाज में कर्म संकर तथा वर्ण संकर का प्रसार होता है और ऐसा होने पर सारा समाज दूषित हो जाता है। अतएव राजा का यह प्रमुख कर्तव्य होता है कि वह जनसाधारण को स्वधर्म से भ्रष्ट न होने दे। जैसा कि –

मुख्यशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च ।  
दुखितैः सम्प्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति ॥

(अर्थशास्त्र अधिकरण 1 अध्याय 4)

कौटिल्य के अनुसार जो राजा सब लोगों को अपने—अपने धर्म पर चलाता है, वह पृथ्वीलोक और स्वर्गलोक दोनों में सुखी रहता है।

अर्थशास्त्र के तीसरे अधिकरण के प्रथम अध्याय में धर्म का सत्य पर आधारित नैतिक कानून के रूप में प्रयोग किया है। कौटिल्य के अनुसार किसी विवाद का निर्णय चार प्रकार के उपायों से किया जा सकता है – धर्म, अर्थ, चरित्र और राजाज्ञा।

धर्म सत्य पर प्रतिष्ठित रहता है, व्यवहार साक्षों के कथन पर निर्भर करता है, चरित्र प्रथाओं एवं परम्पराओं पर आधारित होता है एवं राजाज्ञा न्याय के सिद्धांत पर निर्भर करती है। यदि किसी विवाद के निर्णय के सम्बन्ध में व्यवहार, चरित्र और धर्म में विरोध उत्पन्न हो तो धर्म के अनुसार ही निर्णय किया जाना चाहिए। इस प्रकार व्यवहार एवं चरित्र की अपेक्षा कौटिल्य धर्म को ही प्रमुख स्थान प्रदान करता है, क्योंकि उसे विश्वास है कि धर्म का आधार सत्य होता है। कौटिल्य ने कहा है कि “धर्मपूर्वक प्रजा की रक्षा करनेवाला राजा स्वर्ग की प्राप्ति कर सकता है।” इसके ठीक विपरीत जो राजा प्रजा—पालन के कार्य से विमुख होकर प्रजा को व्यर्थ दण्ड देता है, उसे नकरगामी होना चाहिए। इस प्रकार यहाँ कौटिल्य ने धर्म का प्रयोग नैतिक कानून के रूप में किया है।

कौटिल्य ने धर्म को नागरिक कानून के अर्थ में भी प्रयोग किया है। अर्थशास्त्र के तीसरे अभिकरण का नाम ‘धर्मस्थीयम्’ रखा गया है जिसमें विवाह, कर्ज, उत्तराधिकार, क्रय—विक्रय, चोरी—डकैती, मार—पीट आदि नागरिक कानूनों का उल्लेख किया गया है। इन नागरिक कानूनों की व्याख्या करनेवाले न्यायाधीशों को कौटिल्य ने ‘धर्मस्थ’ की संज्ञा दी है। इससे स्पष्ट है कि कौटिल्य ने धर्म का प्रयोग नागरिक कानून के रूप में किया है।

कौटिल्य ने धर्म को न्याय के उपकरण के रूप में माना है। विवादों के निपटारा में धर्म का प्रथम स्थान है। उनके अनुसार धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजाज्ञा ये विवाद के निर्णायक साधन हैं। कौटिल्य ने कहा है –

“धर्मश्च व्यवहारश्च चरित्रं राजशासनम् ।  
विवादार्थश्चतुष्पादः पश्चिमः पूर्वबाधकः ॥”

(अर्थशास्त्र, अधिकरण 3, अध्याय 1)

अर्थात् धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजाज्ञा, ये विवाद के निर्णायक साधन होने के कारण राष्ट्र के चार पैर माने जाते हैं, इन्हीं पर सारा राज्य टिका है। इनमें भी धर्म से व्यवहार, व्यवहार से चरित्र और चरित्र की अपेक्षा राजाज्ञा श्रेष्ठ है।

## कुमारः राष्ट्रहित के संदर्भ में कौटिल्य के धार्मिक विचार

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि कौटिल्य ने धर्म को लौकिक रूप में माना है। उसने धर्म को अर्थ और काम से अलग नहीं रखा है। उसने स्पष्ट रूप से कहा है कि लौकिक क्षेत्र से अलग होकर धर्म महज एक अकेला दूरस्थ द्वीप बनकर रह जाएगा। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कौटिल्य ने धर्म को व्यक्तिगत और सामाजिक रूप दोनों में चित्रित करने का प्रयास किया है।

कौटिल्य ने धर्म की विवेचना राष्ट्रहित के संदर्भ में ही की है। वे कहते हैं धर्म को राज्य से अलग नहीं किया जा सकता है। प्राचीन भारत में धर्मशास्त्रों एवं राजशास्त्रों में भी धर्म को राज्य का मूल स्तम्भ माना गया है। हमारे प्रायः सभी आचार्यों ने लिखा है कि धर्मपरायण राजा ही सुखी और सम्पन्न हो सकता है। आधुनिक युग में गाँधीजी ने कहा कि धर्मविमुख राजनीति विनाशकारी हो सकती है।

कौटिल्य के अनुसार धर्म का पालन राजनीतिक उपयुक्ता है। राज्य के विकास के लिए धर्म का उपयोग जरूरी है। कौटिल्य ने कहा है कि स्वामी समाज या राज्य का प्रधान होता है, इसलिए यह उसका परम कर्तव्य है कि वह न केवल अपने राज्य के अन्तर्गत, बल्कि जीते हुए सभी भू-भागों में भी धर्म की स्थापना करवाये और उसका पालन भी करवाये। कौटिल्य ने स्पष्ट कहा है कि राजा का कर्तव्य है कि वह प्रजा को धर्म और कर्म मार्ग से भ्रष्ट न होने दे। अपनी प्रजा को धर्म और कर्म में प्रवृत्त रखनेवाला राजा लोक और परलोक में सुखी रहता है। यथोक्तम्—

“तस्मात्स्वधर्मभूतानां राजा न व्यभिचारयेत् ।  
स्वधर्म संदधानो हि प्रेत्य चेह व नन्दति ॥”

उसके अनुसार पवित्र आर्य मर्यादा में अवरिथ्त, धर्म में नियमित और त्रीयीधर्म से रक्षित प्रजा दुःखी नहीं होती है, सदा सुखी रहती है।

प्राचीन भारत का प्रमुख आर्य सत्य यह था कि विश्व मात्र तीन अणुओं का समुच्चय नहीं है। इसका एक विशिष्ट उद्देश्य है और वह है धर्म की सिद्धि और मनुष्यों को जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति।

“सामाजिक व्यवस्था एक चिरंतन व्यवस्था है जिसकी एकता और अखंडता धर्म पर आधारित है। सामाजिक व्यवस्था का अनुरक्षण और धर्म का उन्नयन एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं और सामाजिक विधान में पिरोये हुए हैं। प्राचीन भारत में धर्म और समाज एक दूसरे से इस कदर जुड़ा हुआ था कि अराजकता या राज्यविहीनता की स्थिति मनुष्य की कल्पना से परे थी। अराजकता की स्थिति के खौफनाक परिणामों से भयाक्रान्त मनुष्य राजा को सभी प्रकार की शवितयों से सुसज्जित करने के लिए तैयार थे तथा जीवन के हर क्षेत्र में धर्म का पालन करते थे।”

मनु ने कहा है कि राजा प्रजा से धर्म पालन करवाने के लिए कर्तव्यबद्ध था। उसका देखना यह प्रमुख कर्तव्य था कि प्रजा धर्म का पालन करती है कि नहीं।

कौटिल्य प्राचीन भारत के धर्मशास्त्रों की अवधारणा को मानते हुए कहते हैं कि राजतत्त्व और धर्म एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। उसने कहा है कि राजा को अपने धर्म का पालन करना चाहिए और प्रजाजनों के साथ धर्म और न्याय के साथ व्यवहार करना चाहिए। इसलिए राजा को धर्मप्रवर्तक कहा गया है। धर्मपालक राजा को अपनी इद्रियों को संयमित करना चाहिए। धर्म के द्वारा सामाजिक व्यवस्था का अनुरक्षण किया जा सकता है। कौटिल्य का यह स्पष्ट मत है कि अर्थ, काम और धर्म के सही और संतुलित सम्बन्ध से ही राष्ट्र का विकास हो सकता है। अनर्थ, अधर्म, शोक और निष्क्रियता राष्ट्र के विकास के बाधक होते हैं।

मध्ययुगीन यूरोप के धर्माचार्यों की तरह कौटिल्य ने राजनीति पर धर्म की श्रेष्ठता के सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया है। यह सत्य है कि उसने राजकाज में धर्म को उच्च स्थान दिया है, परंतु उसने राष्ट्रहित से ऊपर श्रेष्ठ नहीं माना है। उनके अनुसार धर्म राज्य के विकास या संवर्द्धन का एक उपकरण है। उसने धर्म, अर्थ और काम तीनों को श्रेष्ठ माना है। जब किसी बात पर राजा के धर्मानुकूल शासन का धर्मशास्त्र के साथ विरोध पैदा हो तो वहाँ राजशासन को ही प्रमाण के रूप में मानना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से धर्मशास्त्र का पाठ मात्र ही नष्ट होता है।

अर्थशास्त्र में कहा गया है—

“शास्त्रं विप्रतिपद्धेत धर्मन्यायेन केनचित् ।  
न्यायस्त्रत्र प्रमाणं स्यात्त्र पाठो ही नश्यति ॥”  
(अर्थशास्त्र, अधिकरण 5 अध्याय 2)

कौटिल्य ने राजा को धर्मप्रवर्तक का विशेषण प्रदान कर यह सिद्ध कर दिया है कि राजा ही धर्म और न्याय का आधार है। राजा के बिना धर्म की न तो प्रासंगिकता है और न महत्त्व।

धर्म और राजनीति के सम्बन्धों की विवेचना करने के क्रम में यह कहा जा सकता है कि धार्मिक संस्थाओं पर राज्य का नियंत्रण रहता है। राजा ही वर्णश्रम धर्म को पालन करवाने का पहला अधिकारी है। यह अधिकार पुरोहित या ब्राह्मण को नहीं दिया गया है। दूसरा पुरोहितों की नियुक्ति राजा के द्वारा ही की जाती है और ये पुरोहित राजा के प्रति भवित रखनेवाले होते हैं। तीसरा, राजा का मन्दिरों और देवालयों पर नियंत्रण रहता है। इन पर नियंत्रण के लिए राजा के द्वारा नियुक्त ‘देवताध्यक्ष’ नामक पदाधिकारी होता है, जिसका यह उत्तरदायित्व रहता है कि देवमन्दिरों से होनेवाला आमदनी को राजकोष में जमा करे।

‘अर्थशास्त्र’ से यह स्पष्ट होता है कि कौटिल्य ने लौकिक कानूनों को धर्मशास्त्रों की अपेक्षा प्राथमिकता दी है और धर्म तथा धार्मिक संस्थाओं को राजसत्ता से ऊपर नहीं माना है बल्कि उसके

## कुमारः राष्ट्रहित के संदर्भ में कौटिल्य के धार्मिक विचार

अधीन ही रखा है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि कौटिल्य ने राजनीति के लिए धर्म की उपेक्षा की है। वह राजा को सर्वोपरि स्थान देते हुए भी उससे यह अपेक्षा करता है कि राजा मनमाने ढंग से काम नहीं करेगा।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कौटिल्य ने धर्म और राजनीति के अभिन्न सम्बन्ध को स्वीकार करते हुए लौकिकवाद को प्राथमिकता दी है। उसके लिए धर्म साध्य न होकर राष्ट्र की प्रगति एवं समृद्धि का प्रमुख साधन है।

यह सर्वदा सत्य है कि राष्ट्रहित में कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कई संदर्भों में वैसे साधनों को अपनाने की सिफारिश की है जिन्हें अनैतिक कहा जाता है, परंतु दूसरी ओर उसने नैतिक मान्यताओं के पालन पर जोर देकर यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि वह राजनीति में अनैतिकता का पक्षधर नहीं है। प्लेटों एवं अरस्तु की तरह कौटिल्य भी राज्य को नैतिक संरक्षा मानता है। कौटिल्य के कई विधानों एवं प्रावधानों से यह स्पष्ट होता है कि कौटिल्य ने राजनीति में नैतिक मान्यताओं को प्रश्रय दिया है।

सबसे पहले नैतिकता बोध इस बात से स्पष्ट होता है कि राजा के लिए चरित्रवान्, सत्यनिष्ठ, धर्मपरायण, विवेकी तथा विभिन्न विधाओं में प्रवीण होना आवश्यक है। 'अर्थशास्त्र' में कहा गया है कि 'राजा को काम, क्रोध आदि छहों शत्रुओं का परित्याग

कर इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना चाहिए तथा विद्वान् पुरुषों की संगति में रहकर बुद्धि का विकास करना चाहिए।'(अर्थशास्त्र अधिकरण 1 अध्याय 6)

कौटिल्य के अनुसार धर्म पालन करने से राजा और राज्य दोनों का विकास होता है। अर्थशास्त्र में कहा गया है –

"धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विघते ।

अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निर्झकम् ॥

"(अर्थशास्त्र, अधिकरण 7 अध्याय 13)

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष – इनमें से जिसने एक भी नहीं पाया, उसका जीवन व्यर्थ है। मनुष्य को अपना जीवन सार्थक बनाने के लिए इनमें से किसी एक का तो होना आवश्यक है।

उपर्युक्त तथ्यों के अनुशीलन से यह स्पष्ट है कि कौटिल्य के द्वारा प्रतिपादित धार्मिक विचार राष्ट्रहित से ओत-प्रोत है। अतः वर्तमान युग में कौटिल्य के धार्मिक विचार का परिशीलन राष्ट्रहित के चिन्तन के संदर्भ में पूर्णतः प्रासंगिक है।

### सन्दर्भ

कौटिल्य अर्थशास्त्र.

व्यास महाभारत